॥ श्रीः ॥

महाकविश्रीकालिदासप्रणीतम्

मेघदूतम्

पूर्वमेघः

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः[1]
शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः ।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥

अन्वयः—स्वाधिकारात् प्रमत्तः कान्ताविरहगुरुणा वर्षभोग्येण भर्तुः शापेन अस्तङ्गमितमहिमा कश्चित् यक्षः जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु स्निग्धच्छायातरुषु रामगिर्याश्रमेषु वसतिं चक्रे ।

पदार्थः—स्वाधिकारात्प्रमत्तः=अपने काम से प्रमाद करने वाला, असावधान । कान्ताविरहगुरुणा=प्रिया के वियोग से दुःसह । वर्षभोग्येण=साल तक भोगे जानेवाले । भर्तुः=स्वामी के । शापेन=शाप से । अस्तंगमितमहिमा=जिसकी महिमा (सामर्थ्य) का विनाश कर दिया गया था, अर्थात् महिमा से वञ्चित किया गया हुआ । यक्षः=देवयोनिविशेषः, 'विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्व-किन्नराः । पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनय' इत्यमरः । जनक-तनया०=जनक की पुत्री (सीता) के स्नानों से पवित्र जलोंवाले । स्निग्धच्छाया०=घने छायादार वृक्षों से युक्त । रामगिर्याश्रमेषु=रामगिरि के आश्रमों में । वसतिम्=निवासस्थान, डेरा । चक्रे=बनाया ।

भाषानुवादः—अपने कार्य से प्रमाद (असावधानी) करनेवाले (अत एव) प्रिया के वियोग के कारण दुःसह एवं वर्ष तक भोगने योग्य स्वामी के शाप द्वारा (अपनी) महिमा से वञ्चित किये गये किसी यक्ष ने जनक-पुत्री (सीता) के स्नानों से पवित्र हुए जलोंवाले तथा घने छायादार वृक्षों से युक्त रामगिरि के आश्रमों में डेरा डाला ।

१—स्वाधिकारप्रमत्तः सु० वि०, वल्ल०, म० सि०, विल्स० ।

साहित्य में इनका पर्याप्त उल्लेख मिलता है। ये धन के देवता कुबेर के सेवक कहे गये हैं, इस कारण कुबेर को 'यक्षेश्वर' भी कहा जाता है; देखिए पद्य ७ 'गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणाम्'। यक्षों का काम कुबेर के उद्यानों और कोश की रक्षा करना है। यक्ष शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है 'यक्ष्यते पूज्यते इति यक्षः' अथवा 'इः कामः तस्य इव अक्षिणी यस्य' अथवा 'इः अक्ष्णोः यस्य' इति।

स्निग्धच्छाया०—मल्लि० ने० 'स्निग्ध' का अर्थ सान्द्र (घना) लिया है। छायाप्रधानास्तरवश्छायातरवः शाकपार्थिवादिवत् मध्यमपदलोपी कर्मधारय है। इस प्रकार 'छाया-तरवः' से नमेरु वृक्षों का अर्थ लिया है। इसका 'घने छाया देने वाले वृक्ष' यह अर्थ करना अच्छा है। 'स्निग्ध' का अर्थ 'रम्य' सुन्दर भी लिया जा सकता है; इस प्रकार यह छाया का विशेषण है। एक टीकाकार 'छाया-तरवः' की इस प्रकार व्याख्या करता है—'पूर्वापरदिग्भागेऽपि सवितरि येषां छाया न परिवर्त्तते ते छाया-तरव उच्यन्ते'।

आश्रमेषु—इससे यह प्रकट होता है कि अपनी कान्ता से वियुक्त हुआ यक्ष एक स्थान पर न ठहर कर कई आश्रमों में रहता रहा।

जनकतनयास्नान-पुण्योदकेषु—सीता जन्म से पवित्रता की मूर्ति मानी जाती है, अतः उसके स्नान से रामगिरि के आश्रम भी पवित्र हो गये। देखिए उत्तर० 'उत्पत्तिपरिपूतायाः किमन्यैः पावनान्तरैः'।

रामगिरि—वल्लभ और मल्लिनाथ 'रामगिरि' से चित्रकूट पर्वत लेते हैं। विल्सन महोदय के विचार में यह पर्वत 'रामटेक' (Hill of Rama) ही है, जो नागपुर के पास उत्तर की ओर है। आधुनिक पुरातत्त्व-अनुसंधान के अनुसार 'रामगिरि' का मध्यप्रान्त में स्थित रामगढ़ से अभिप्राय है, क्योंकि यह आम्रकूट या अमरकण्टक के बिलकुल समीप है—जिससे नर्मदा नदी निकलती है। कवि ने आम्रकूट और नर्मदा इन दोनों का आगे उल्लेख किया है।

इस सारे काव्य में 'मन्दाक्रान्ता छन्द है, जिसका लक्षण इस प्रकार है—'मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ तादगुरू चेत्'। इस छन्द में प्रत्येक पाद में

S S S S I I I I I S S I S S I S S

१७ अक्षर होते हैं और वे मगण, भगण, नगण, तगण, तगण, और दो गुरु होते हैं

S S S S I I I I I I S S I S S I S S

—जैसे—कश्चित्का—न्ताविर—हगुरु—णास्वाधि—कारात्प्र—मत्तः ॥१॥

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ।
आषाढस्य [1] प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥ २ ॥

अन्वयः—अबलाविप्रयुक्तः कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः स कामी तस्मिन् अद्रौ कतिचित् मासान् नीत्वा आषाढस्य प्रथमदिवसे आश्लिष्टसानुं वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं मेघं ददर्श ।

पदार्थः—अबलाविप्रयुक्तः = प्रिया से बिछुड़ा हुआ । कनकवलय० = सोने के कड़े के गिर पड़ने से शून्य कलाईवाला । कामी = भोग-विलासी । अद्रौ = पहाड़ पर । कतिचित् मासान् = कुछ महीनों को । नीत्वा = बिताकर । आश्लिष्ट-सानुम् = पहाड़ की चोटी से सटे हुए । वप्रक्रीडापरिणत० = टीले से मिट्टी उखाड़ कर खेल में तिरछे दाँतों से प्रहार करते हुए हाथी के समान दीखनेवाले । मेघम् = बादल को । ददर्श = देखा ।

भाषानुवाद—प्रिया से बिछुड़े हुए, (कृशता के कारण) सोने के कड़े के गिर जाने से शून्य कलाईवाले, उस कामी ने कुछ महीने उस पहाड़ पर बिता कर, आषाढ़ के पहले दिन पहाड़ की चोटी से सटे हुए बादल को देखा, जो कि टीले से मिट्टी उखाड़ने के खेल में तिरछे दाँतों से प्रहार करते हुए हाथी के समान दिखाई दे रहा था ।

व्याकरणम्—अबलाविप्रयुक्तः = अबलया विप्रयुक्तः (तृतीया०तत्पु०) । कामी = √कम्+इन् (णिनि) कर्तरि अथवा √कम्+घञ् भावे कामः सः अस्ति अस्य इति काम+इनि (मत्वर्थ) । कतिचित् = कति+चित्; इसमें 'कति' 'मासान्' का विशेषण है । 'कति' सर्वनाम के रूप बहु० में ही होते हैं । इसके रूप प्र० द्वि० में कति तथा अन्य विभक्तियों में 'हरि' के समान होते हैं । प्रथमदिवसे प्रथमः दिवसः (कर्मधा०) तस्मिन् अधिकरणे सप्तमी । आश्लिष्ट० = आ√श्लिष्, दि० प० (चिमटना)+क्त । आश्लिष्टः सानुः येन (बहुव्री०) तम् । कनकवलय० = कनकस्य वलयः कनकवलयः (ष० तत्पु०) तस्य भ्रंशेन रिक्तः प्रकोष्टः यस्य सः (ब०व्री०) । वप्रक्रीडापरिणत = वप्रक्रीडासु परिणतः स चासौ गजः (कर्मधा०) सः इव प्रेक्षणीयः उपमान—कर्मधा० । 'उपमानानि सामान्यवचनैः' से समास हुआ । तं मेघम्

१—प्रशमदिवसे—वल्ल० ।

प्रेक्षणीयम् प्र+√ईक्ष् (भ्वा० आ०)+अनीय (कृत्यप्र०)। ददर्श √दृश् भ्वा० प० (देखना) लिट् प्र० पु० एक०।

विशेष:—आषाढ=इसके विषय में मल्लि० ने टीका में लिखा है—आषाढा-नक्षत्रेण युक्ता पौर्णमास्याषाढी (ङीप्) साऽऽषाढी अस्मिन्पौर्णमासी-त्याषाढो मासः। इसके साथ अण् (अ) प्रत्यय तथा ङीप् (ई) प्रत्यय लगने से क्रमशः 'आषाढः', 'आषाढी' ये शब्द इस नाम के महीने के अर्थ में प्रयुक्त होते है। आषाढा नक्षत्र दो प्रकार का होता है—पूर्वा आषाढा तथा उत्तरा आषाढा।

प्रथमदिवसे—इससे यह बात प्रतीत होती है कि सम्भवतः कालिदास के समय में वर्षा आषाढ मास के प्रथम दिन से प्रारम्भ होती थी। ऋतुसंहार में वर्षा-प्रारम्भ का यही समय बताया गया है। 'प्रथमदिवसे' इसके स्थान में पद्य सं० ४ में 'प्रत्यासन्ने नभसि' इस पाठ की उपपत्ति के लिए, 'प्रथमदिवसे' (अन्त के दिन) यह पाठान्तर है। इसके अनुसार 'प्रथमदिवसे' इस पाठ से सामान्यतः आषाढ और श्रावण दोनों महीनों की समीपता का बोध होता है, न कि इन महीनों के कुछ दिनों का। इस सम्बन्ध में मेघदूत (उ० मे०) के पद्य ५० में (शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ शेषान्मासान्गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा—) कहे गए 'चतुरः मासान्' इन शब्दों का अक्षरार्थ न लेकर 'प्रायः चार महीने' अर्थ लेना चाहिए। अधिक के लिए वहाँ का विशेष देखिए।

वप्रक्रीडापरिणत०—टीले से मिट्टी उखाड़ कर खेल में तिरछे दाँतों से प्रहार करते हुए हाथी के समान दिखाई देनेवाले। इसमें उपमा है। सम्भवतः यह उपमा इसलिए दी गई है, क्योंकि बादल कई प्रकार की विचित्र आकृतियों को धारण करता है; जैसे—हाथी, भैंसा, सूअर, बैल आदि। देखिए पार्श्वा० 'महिषाश्च वराहाश्च मत्तमातङ्गरूपिणः'। वप्र का अर्थ किले के आस-पास की दीवार या कच्ची दीवार से है; अतः 'वप्रक्रीडा' से सींगों या दाँतों द्वारा इस प्रकार की दीवार के साथ टक्कर मारना अर्थ विवक्षित है। दे खिए—रघु० सर्ग V पद्य ४४—'निःशेषविक्षालितधातुनापि वप्रक्रियामृक्षवतस्तटेषु। नीलोर्ध्व कुण्ठितेन। शिशु० IV, २९ 'परिणतदिक्करिकास्तटीर्बिभर्ति'। परिणत शब्द का 'एक पार्श्व से तिरछे होकर दाँतों द्वारा प्रहार करने वाला हाथी' अर्थ है। देखिए—तिर्यग्दन्तप्रहारस्तु गजः परिणतो मतः। हलायुध II ६५। गज शब्द पृथक् आने

से प्रकृत पद्य में 'परिणत' शब्द विशेष्यता को छोड़कर केवल विशेषणता का ही प्रतिपादक है। 'गजप्रेक्षणीयम्' में उपमा-वाचक इव शब्द का लोप होने से यह लुप्तोपमा है।

कनकवलयभ्रंश०—इसके लिए देखिए अभि० शाकु० III, १२ 'अनभि-लुलितज्याघातांकं मुहुर्मणिबन्धनात्कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते ॥२॥

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः [1]कौतुकाधानहेतो-
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥३॥

अन्वयः—राजराजस्य अनुचरः अन्तर्बाष्पः (सन्) कौतुकाधानहेतोः तस्य पुरः कथमपि स्थित्वा चिरं दध्यौ। मेघालोके (सति) सुखिनः अपि चेतः अन्यथा-वृत्ति भवति, कण्ठाऽऽश्लेषप्रणयिनि जने दूरसंस्थे (सति) किं पुनः ?

पदार्थः—राजराजस्य = कुबेर के। अनुचरः = सेवक ने। अन्तर्बाष्पः = अन्दर ही अन्दर आंसुओं को रोके हुए। कौतुकाधानहेतोः = उत्कण्ठा उत्पादन का कारणीभूत। कथमपि = किसी तरह, बड़े कष्ट से। दध्यौ = सोचा। मेघालोके = बादल के दीखने पर। सुखिनः अपि = सुखी (व्यक्ति) का भी। चेतः = चित्त। अन्यथावृत्ति = और ही वृत्तिवाला अर्थात् विकृत। भवति = हो जाता है। कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने = गले लगाने की अभिलाषावाले व्यक्ति के। दूरसंस्थे = दूर स्थित होने पर। किं पुनः = तो कहना ही क्या ?

भाषानुवादः—कुबेर का सेवक (यक्ष) भीतर ही भीतर आँसू रोके हुए, उत्सुकता पैदा कर देनेवाले उस बादल के सामने किसी तरह ठहर कर देर तक सोचता रहा। बादल के दिखाई देने पर सुखी (व्यक्ति) का भी चित्त विकृत (डावांडोल) हो जाता है, फिर गले मिलने की अभिलाषावाले व्यक्ति के दूर स्थित होने पर तो कहना ही क्या ?

व्याकरणम्—राजराजस्य = राज्ञां (यक्षाणां) राजा (ष० तत्पु०) राजराजः; 'राजराजो धनाधिपः' इत्यमरः। 'राजाहःसखिभ्यष्टच्' इससे 'टच्' (अ) प्रत्यय हुआ। 'राजराज' के रूप राम की तरह चलेंगे। अन्तर्बाष्पः = अन्तः (अव्यय) स्तम्भितं बाष्पं (मध्यमपदलोपी कर्म०) यस्य सः (बहुव्री०)

१—केतका० सु० वि०, वल्ल०, सारो०, म० सि०, वि० तथा अन्य।

कौतुका० = कौतुकस्य आधानम् तस्य हेतोः (षष्ठी-त०) आधान = आ+√धा, (जु० उभ०)+ल्युट् भावे आधानम्। स्थित्वा = √स्था, (भ्वा० प०)+क्त्वा। चिरम् = अव्यय। दध्यौ = √ध्यै (भ्वा० प०) लिट् प्र० पु० एक०। मेघालोके = मेघस्य आलोकः तस्मिन् सत्-सप्त०। आलोक = आ+√लोक्+घञ्, भावे। सुखिनः = सुखमस्य विद्यते इति सुखी तस्य, सुखिन् का ष० एक०। अन्यथावृत्ति = अन्यथा वृत्तिः यस्य (बहुव्री०) चेतः (नपुं०) का विशे०। कण्ठाश्लेषः = = कण्ठस्य आश्लेषः तस्य प्रणय-इनि (मत्वर्थे) तस्मिन्। दूरसंस्थे = दूरे संस्था (स्थितिः) यस्य बहुव्री०। संस्था—सम्+√स्था+घञ् भावे+टाप्।

विशेषः—कौतुकाधानहेतोः = यह पाठ 'केतकाधानहेतोः,' इस पाठान्तर से अच्छा है, क्योंकि इससे प्रेमियों के हृदय में वर्षाकाल के आने से अधिक विकार पैदा होता है और बादल को देखकर एक दूसरे के प्रति उत्कण्ठा का भाव पैदा होना स्वाभाविक ही है। केतका० से वर्षा में केतकी के पौधे के प्रकट होने से उतनी उत्कण्ठा नहीं होती जितनी बादल के दीखने से। साथ ही इस पाठान्तर से आषाढ़ के प्रथम दिवस से जब कि वर्षा का प्रारम्भ होता है, कोई सम्बन्ध नहीं मिलता। मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा०—सारोद्धारिणी के अनुसार 'अन्यथावृत्ति' का अर्थ 'अस्वस्थम्' या प्रचलोत्कलिकाकुलम्' इस प्रकार है। देखिये—विक्रमोर्वशी, अंक IV—'एतेन पुनर्निवृत्तानामप्युत्कण्ठाकारिणा मेघोदयेनानर्थाधीनो भविष्यति'। और देखिए—ऋतु० II. 'समागत घनागमः कामिजनप्रियः प्रिये ! ॥३॥

अथ समाहितान्तःकरणः सन् किं कृतवानित्यत आह—

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी[1]
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन्प्रवृत्तिम्।
स[2] प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥४॥

अन्वयः—सः (यक्षः) नभसि प्रत्यासन्ने दयिताजीविताऽऽलम्बनार्थी जीमूतेन स्वकुशलमयीं प्रवृत्तिं हारयिष्यन् प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै (जीमूताय) प्रीतः (सन्) प्रीति-प्रमुख-वचः स्वागतं व्याजहार।

१-लम्बानर्थं सु० वि०, म० सि०, सारो०, विल्स०। २-संप्रत्यग्रैः वल्ल०।

पदार्थ:—नभसि = श्रावणमास के। प्रत्यासन्ने = समीप आने पर। दयिता-जीवितालम्बनार्थी = प्रिया के जीवन के आलम्बन (धारण) के इच्छुक। जीमूतेन = बादल के द्वारा। स्वकुशलमयीम् = अपनी कुशल (को बतलाने) वाले। प्रवृत्तिम् = समाचार को। हारयिष्यन् = भेजना चाहता हुआ। प्रत्यग्रैः = अभिनव (ताजे)। कुटजकुसुमैः = गिरिमल्लिका (पहाड़ी चमेली, कुरैया) के फूलों से। कल्पितार्घाय = जिसके लिये अर्घ (पूजा की सामग्री) तैयार की गई है। प्रीतिप्रमुखवचनं = प्रेमपूर्वक शब्दों में (क्रिया-विशेषण)। स्वागतम् = शुभागमन। व्याजहार = कहा।

भाषानुवाद—सावन मास के समीप आने पर प्रिया के प्राणों को सहारा देना चाहते हुए उस (यक्ष) ने मेघ द्वारा अपना कुशल-समाचार पहुँचाने की अभिलाषा से ताजे चमेली के फूलों से अर्घ-सामग्री तैयार करके उस (मेघ) को, प्रसन्न होकर, प्रेम--पूर्वक शब्दों में 'स्वागतम्' कहा।

व्याकरणम्—प्रत्यासन्ने = प्रति+आ+√सद् (भ्वा० प०)+कर्त्तरि, क्त, सन् सप्तमी एकवचन। नभसि = नभस् (नपुं०) सप्तमी एक०। दयिता-जीविता० = दयिताया जीवितं (ष० तत्पु०) दयिताजीवितं तस्य आलम्बनं तस्य अर्थी, 'सः' का विशेषण। जीमूतेन = जीवनस्य उदकस्य मूतः पटबन्धः जीमूतः (पृषोदरादित्वात्साधुः)। स्वकुशल० = स्वस्य कुशलम् (ष० तत्पु०)तेन प्रकृतमिति स्वकुशल+मयट् स्त्रियाम्। हारयिष्यन् = √हृ (भ्वा० उभ०)+णिच् (प्रेरणार्थक) भविष्यदर्थ में शतृन्त, प्रथ० एक० 'सः' का विशेषण। प्रत्यग्रैः = अग्रं प्रति गतः प्रत्यग्रः तैः। कल्पितार्घाय = कल्पितोऽर्घो यस्मै (बहु-व्री०)। तस्मै = तद्(पुं०) चतु० एक०। सम्प्रदाने चतुर्थी। प्रीतिप्रमुख० = प्रीतिप्रमुखानि वचनानि यस्मिन् कर्मणि यथा तथा (बहुव्री०), क्रि० विशे०। स्वागतम् = सु (अव्यय)+आ+√गम्+क्त, भावे आगतं, सुशोभनमागतम्। (नित्यकर्मधा०) व्याजहार = वि+आ √हृ (भ्वा० उभ०), लिट्, प्र० पु० एक०।

विशेष:—प्रत्यासन्ने नभसि = श्रावणमास विरही प्रेमियों के लिए दुःख देने-वाला होता है। देखिए—पद्य, ८ 'कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायाम्'। निम्नलिखित उक्तियाँ भी देखिये—'शिखिनि कूजति गर्जति तोयदे स्फुरति जातिलताकुसुमाकरे। अहह पान्थ न जीवति ते प्रिया नभसि मासि न

वासि गृहं यदि ॥' 'उपरि पयोधरमाला दूरे दयिता किमेतदापतितम् । हिमवति दिव्यौषधयः कोपाविष्टः फणो शिरसि ॥' मुद्रा० ।

कल्पितार्घाय अर्घयते अनेन इति अर्घः । 'अर्घ' की व्युत्पत्ति √अर्घ्, अथवा √अर्घ् से हुई है । 'अर्घ' किसी देवता, प्रतिष्ठित व्यक्ति या अतिथि-विशेष को दिया जाता है । सामान्यतः इसमें निम्नलिखित वस्तुएँ होती हैं—आपः क्षीरं कुशाग्राणि दधि सर्पिश्च तण्डुलाः । यवाः सिद्धार्थकं चैव अष्टांगार्घ्य प्रकीर्तितम् ॥'

प्रीतिप्रमुख०—मल्लि० इसे क्रि० विशे० मानता है, पर सारोद्धारिणी में इसे 'स्वागतम्' का विशेषण मानकर इसकी व्याख्या की गई है—प्रीत्या प्रमुख स्नेह-निर्भरं वचनं यत्र तत् स्वागतम् ॥४॥

धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि [1]प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥५॥

अन्वयः—धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः मेघः क्व ! पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः सन्देशार्थाः क्व ! इति औत्सुक्यात् अपरिगणयन् गुह्यकः तं ययाचे । हि कामार्ताः चेतनाचेतनेषु प्रकृतिकृपणाः (भवन्ति) ।

पदार्थः—धूमज्योतिःसलिल०=धुआँ, प्रकाश, जल और वायु का । सन्निपातः=मिश्रण, मेल । पटुकरणैः प्राणिभिः=समर्थ इन्द्रियों-वाले प्राणियों द्वारा । प्रापणीयाः=पहुँचाए जाने योग्य । सन्देशार्थाः=सन्देश की बातें । इति=यह । औत्सुक्यात्=उत्कण्ठा के कारण । अपरिगणयन्=न विचारते हुए । गुह्यकः=यक्ष ने । ययाचे=प्रार्थना की । हि=क्योंकि । कामार्ताः=काम से पीड़ित । चेतनाचेतनेषु=सजीव और निर्जीव पदार्थों के प्रति । प्रकृतिकृपणाः=स्वभाव से दीन, विवेक-रहित ।

भाषानुवादः—'कहाँ तो धुआँ, प्रकाश, जल और वायु—इनका सम्मिश्रण-रूप मेघ और कहाँ सशक्त इन्द्रियोंवाले प्राणियों द्वारा पहुँचाए जानेवाले सन्देश' इस (बात) को न विचारते हुए यक्ष ने उस (बादल)से प्रार्थना की; क्योंकि

१— णय ।

काम से पीड़ित लोग जड़-चेतन पदार्थों के प्रति स्वभावतः दीन—विवेकशून्य हो जाया करते हैं।

व्याकरणम्—धूमज्योति० = धूमश्च ज्योतिश्च सलिलं च मरुच्च (द्वन्द्व-समास) तेषां संनिपातः (ष०तत्पु०)। संनिपातः = सम्+नि+√पत् (भ्वा० प०+घञ् भावे)। पटुकरणैः = पटूनि करणानि (इन्द्रियाणि) येषाम् बहुव्री० तैः। प्राणिभिः का विशे०। प्रापणीयाः = प्र+√आप् (स्वा० प०)+णिच् +अनीय (कृत्य प्र०)। सन्देशार्थाः संदिश्यन्ते इति सन्देशाः ते एव अर्थाः (कर्मधारय); भवन्ति लुप्तक्रिया का कर्त्ता। औत्सुक्यात् = उत्सुकस्य भावः औत्सुक्यम् तस्मात् कारणात् अपरिगणयन् = न+परि+√गण्+अत् (शतृ) ययाचे = √याच् (भ्वा० आ०) लिट् लकार, प्र० पु० एक०। कामार्ताः = कामेन आर्ताः (तृ० तत्पु०)। प्रकृति-कृपणाः = प्रकृत्या कृपणाः (तृ० तत्पु०)। चेतनाचेतनेषु = चेतनाश्चाचेतनाश्च (द्वन्द्व) तेषु। गुह्यक—गुह्यं कुत्सितं कायति √कै = शब्दे+कः। गुह्यं गोपनीयं कं सुखं यस्येति वा। गूहति निधिं रक्षति, √गुह +अक् (ण्वुल्)। यहाँ धातु और प्रत्यय के बीच 'य' अनियमित रूप से लगा है।

विशेषः—क्व ..... क्व = द्वौ क्वशब्दौ महदन्तरं सूचयतः। क्व···क्व यह विषमालंकार का उदाहरण है। विषमालंकार में दो विषम वस्तुओं को बताया जाता है। देखिए—रघु० I, २ 'क्व सूर्य-प्रभवो वंशः क्व चाल्प-विषया मतिः'। अभि० शाकु० I, १० 'क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते'। और देखिए इसी नाटक का II. १८ पद्य 'क्व वयं क्व परोक्षमन्मथो मृगशावैः सममेधितो जनः'। कुमार० ५, ४ पद्य में भी देखिए 'तपः क्व वत्से क्व च तावकं वपुः'।

धूमज्योतिःसलिल० = इस पाद से हमें यह पता लगता है कि कवि कालिदास भौतिक विज्ञान तथा रासायनिक विज्ञान से भी परिचित था। मेघ के अवयव—धुआँ, ज्योति (अग्नि), जल तथा वायु बता कर अच्छा रासायनिक विश्लेषण दिखाया है। इस पंक्ति से हमें कवि के प्रकृति-निरीक्षण का उदाहरण भी मिलता है।

कामार्ता हि प्रकृति० = इसमें अर्थान्तरन्यास अलंकार है। इसमें सामान्य का विशेष अथवा विशेष का सामान्य से समर्थन होता है। प्रस्तुत पद्य में विशेष का सामान्य से समर्थन किया गया है।